इकाई 11 जाति आधारित संगठन और राजनीतिक गठन*

इकाई की रूपरेखा

11.0 उद्देश्य

11.1 भारत में जाति व्यवस्था को समझना

11.2 जाति आधारित संगठनों का उदय

11.3 जातिवादी संगठनों द्वारा उठाये गये मुद्दे

11.4 जातिगत गठबंधन (Caste Formations)

11.5 चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका

11.6 गैर-चुनावी राजनीति में भूमिका

11.7 सारांश

11.8 संदर्भ सूची

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

11.0 उद्देश्य

इस इकाई में आप भारत में जाति व्यवस्था की अवधारणा एवं इससे जुड़े विभिन्न संगठनों के बारे में पढ़ेंगे। इस इकाई में भारतीय राजनीति में जाति की भूमिका का भी उल्लेख होगा। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आय यह समझ सकेंगे :

- भारत में जाति व्यवस्था की व्याख्या;
- जाति आधारित संगठनों के उदय पर चर्चा;
- भारत में चुनावी एवं गैर-चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका का विश्लेषण करना।

11.1 भारत में जाति व्यवस्था को समझना

जाति को वंशानुगत अंतर्विवाही समूह में परिभाषित किया जा सकता है इसमें समान नाम, समान परंपरागत व्यवसाय, समान संस्कृति, गतिशीलता के मामने में कठोरता, पद की विशिष्टता के आधर पर सजातीय समुदाय बनता है। इस शब्द की उत्पत्ति स्पैनिष और पुर्तगीज के शब्द 'कास्टा' से हुई है, जिसका अर्थ है 'वंश' या 'नस्ल' या एक स्तरीकरण वाली व्यवस्था है। इसका अर्थ यह है कि किसी व्यक्ति का सामाजिक स्तर उसकी जाति जिसमें उसके जन्म लिया हो से निर्धारित होता है।

भारतीय जाति व्यवस्था को चार स्तरीय वर्ण व्यवस्था में वर्गीकृत किया गया है। वर्ण व्यवस्था ब्राह्मण में सबसे ऊपर है, ये पुजारी एवं विद्धान माने जाते थे। इसके नीचे क्षत्रिय हैं, जो कि शासक या सैनिक होते थे। उसके नीचे वैष्य आते हैं, जिसे हम बनिया या व्यापारी भी कहते है। सबसे नीचे शूद्र होते हैं जो मुख्य रूप से मजदूर, किसान, कामगार, और नौकर होते हैं। शुद्रों को वर्ण व्यवस्था के बाहर अछूत वर्ग होते थे जिनको वर्ण व्यवस्था से बाहर रखा गया था। भी माना जाता है। सभी वर्णों में अनेक जातियाँ और जाति एवं उप-जाति होती है।

*डॉ. अंकिता दत्ता, रिसर्च फैलो, आई.सी.डब्लू.ए., नई दिल्ली

भारत में जाति व्यवस्था में स्वतंत्रता के बाद एवं 19वीं सदी के बीच काफी बदलाव हुए हैं क्योंकि इस दौरान कई सामाजिक धार्मिक एवं विरोध आन्दोलन हुए थे। इन आन्दोलनों ने जनता के जाति व्यवस्था के दृष्टिकोण को परिवर्तिति किया। इन आंदोलनों में सबसे प्रमुख थे ब्रह्म समाज, आर्य समाज, रामकृष्ण मिषन एवं थियोसोफिकल सोसाइटी आंदोलन। विरोध आंदोलनों में ज्योति फूले का सत्य शोधक समाज आंदोलन (पूना), गैर-ब्राह्मण आंदोलन रामास्वामी नायकर, जिसे हम पेरियार के रूप में भी जानते थे, (मद्रास), तथा अस्पृश्यता के खिलाफ चलाया गया आंदोलन जिसका नेतृत्व डा. बी. आर. अंबेडकर एवं महात्मा गाँधी ने किया प्रमुख हैं। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद, शहरीकरण, उद्योगीकरण, शिक्षा के प्रसार, सामाजिक-धार्मिक सुधार, पश्चिमीकरण इत्यादि ने भी जाति व्यवस्था के परिवर्तन में योगदान दिया। इसके अलावा, संविधानिक प्रावधान जैसे मूल अधिकार (अनु. 14,15 16 एवं 17), तथा नीति निर्देशक सिद्धांतों ने जाति के सुधार में बड़ी भूमिका रही है। विशेषकर शिक्षा ने लोगों को उदार, तार्किक, लोकतांत्रिक एवं व्यापक समझ का बनाया। इन सब कारकों ने जाति व्यवस्था से संबंधित कानूनों को सुगम बनाया परिणाम स्वरूप विभिन्न जातियों में ऊपर उठकर संबंध तथा सहयोग बढ़ा। अब जाति व्यक्ति की स्वतंत्रता में बाध ाक नहीं है, व्यक्ति के व्यवसायिक कैरियर में अब जाति व्यवधान नहीं है। समकालीन समय में अंतर-जातीय सामाजिक संबंधों में भी काफी बढ़ोतरी हुई है।

11.2 जाति आधारित संगठनों का उदय

जाति एवं लोकतांत्रिक राजनीतिक व्यवस्था एक दूसरे के विरोधी मूल्यों के प्रतीक हैं। जाति स्तरीकरण पर आधारित है जिसमें व्यक्ति की पहचान उसकी जाति से होती है जिसमें उसने जन्म लिया हो। जबकि दूसरी तरफ लोकतांत्रिक व्यवस्था व्यक्ति की स्वतंत्रता एवं समानता का समर्थन करती हैं, तथा इसमें कोई भी व्यक्ति कानून से ऊपर नहीं है। संविधान के अनुसार भारत में लोकतांत्रिक संस्थाओं का उदय हुआ, इसने भारतीय समाज को काफी परिवर्तित किया है। इसने राजनीति की प्रकृति को भी बदला है। रजनी कोठारी ने अपनी किताब, ''कॉस्ट इन इंडियन पालिटिक्स'' में यह दलील दी कि भारत में जाति का राजनीतिकरण हो रहा है। जाति एवं राजनीति के बीच संबंध स्थापित हो गये है जिसने दोनों को बदल दिया है। इसके परिणामस्वरूप जाति का निरपेक्षीकरण हो रहा है। जाति का निरपेक्षीकरण का अथ है जाति अपनी परंपरागत भूमिका से हटकर नयी भूमिका में आ गयी है। इसके सिद्धांत अब बदल चुके है। इसने जातियों की धर्मनिरपेक्ष हितों की तरफ जाति को एकत्रित किया है। इससे जातियों के शासन सत्ता एवं रोजगार जैसे मुद्दों पर लामबंदी को बल मिला है। जाति के निरपेक्षीकरण से अंतर्राजातीय समझौतों और गठबंधनों के गठन में मदद मिली है।

जाति अब नयी भूमिका में आ गयी है। अब जातियों के आधार पर संगठनों का गठन हो रहा है। ये संगठन अपनी जातियों के सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक मुद्दों को उठा रहे हैं। अब जातिगत संगठन सरकार को अपनी माँग पूरी करने को विवष कर रहे हैः जैसे, उनकी माँगें हैं शैक्षिक सुविधाऐं, भूमिका बंटवारा एवं मालिकाना, सरकारी नौकरियाँ, इत्यादि। वे अपनी माँगों को पूरा करने के लिए जन सभा करते हैं तथा सरकार को ज्ञापन देते हैं।

जातियाँ संगठन बनाकर जातियां अपने हितों को व्यक्त करते हैं। जातिवादी संगठन दो प्रकार के होते हैंः एक, जो संगठन विशेष जातियों से बने हैं, तथा दूसरा, विभिन्न जातियों के गठबंधन द्वारा बनाये गये संगठन, जिन्हें संघ कहा जाता है। अपने-अपने हितों को पूरा करने के लिये बनाए जाते हैं, चाहे शिक्षा की सुविधाऐं हों, भूमि पर मालिकाना हक हों, सरकारी नौकरियों इत्यादि के लिए एवं सामाजिक उत्थान के लिए। जातियों के संगठनों की

उत्पत्ति स्वतंत्रता प्राप्ति के पूर्व हुई। प्रारंभिक स्तर पर, जातिवादी संगठनों का मुख्य संबंध कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व करना एवं उनकी आवाज बनना था। लेकिन उदारवादी लोकतंत्र एवं वयस्क मताधिकार में विस्तार के बाद उनकी माँग भी बढ़ने लगी, विशेषकर प्रशासन, शिक्षा एवं राजनीति में अपना प्रतिनिधित्व की माँगें। रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ ने भी जातिवादी संगठनों की भूमिका की समीक्षा इस प्रकार की है :- ''जातिवादी संगठनों का प्रयास था कि उनके सदस्यों का निर्वाचित कार्यालयों में चयन हो या राजनीतिक दलों के राजनीतिक दलों की गतिविधियों या अपने संगठन बने। वे ये प्रयत्न करते हैं कि, राज्य मंत्रीमंडल में उनका प्रतिनिधित्व बढ़े और प्रशासनिक मषीनरी पर दबाव बनाकर अपनी जाति के उद्देश्यों को पूरा करते हैं। विशेषकर, कल्याणकारी, शैक्षिक एवं आर्थिक क्षेत्र में। जातिवादी संगठनों का सबसे महत्वपूर्ण पहलू यह है कि, उन्होंने अशिक्षित जनता को राजनीतिक तौर पर संगठित किया जिससे उन्हें राजनीतिक लोकतंत्र के मूल्यों एवं उनकी अपेक्षाओं को पूरा करने में मदद मिली''। इस रणनीति से उनकी स्थिति मजबूत हुई तथा उनकी माँगों को राजनीतिक व्यवस्था द्वारा पूरा करने एवं स्वीकार करने को मजबूर होना पड़ा।

जाति की प्रकृति में बदलाव का प्रमुख कारण है जाति एवं राजनीतिक संस्थाओं के बीच वार्तालाप का होना। रजनी कोठारी ने जाति एवं राजनीती के बीच तीन महत्वपूर्ण बिन्दुओं पर जोर दिया। प्रथम बिन्दु है जाति का राजनीतिक भागीदारी के द्वारा धर्मनिरपेक्षीकरण इसने परंपरागत जाति के कठोर लक्षणों को तोड़ा, परंपरागत सामाजिक व्यवस्था को बदलने में योगदान दिया। इससे विभिन्न जातियों को एक दूसरे के साथ संलग्न होने तथा सामाजिक गतिशीलता की प्रक्रिया को भी बढ़ावा मिला। दूसरा बिन्दु एकीकरण आयाम से संबंधित है। जाति व्यवस्था न केवल व्यक्तियों को अपनी जाति के आधार पर अलग करता है बल्कि उन्हें व्यवसाय एवं आर्थिक पहलू पर भी अलग करता है। इसी के साथ-साथ जाति व्यवस्था का आंतरिक ढ़ाँचा भी है जिसमें छोटे समूह कार्य करते है। तीसरा बिन्दु चेतना से संबंधित है जहाँ जाति का राजनीति में प्रवेश चेतना के आधार पर होता है और इस प्रकार जाति का राजनीतिकरण हो जाता है। वोट के अधिकार ने भी दलितों के अंदर चेतना का भाव पैदा किया है तथा आरक्षण ने इन समुदाय को और अधिक मजबूत बनाया है। इस प्रकार जाति संगठनों एवं राजनीतिक दलों के बीच बातचीत का परिणाम को तीन नतीजों से लगाया जा सकता है :- पहला, जाति सदस्य विशेषकर गरीब एवं शोषित वर्ग जो सदियों से अछूत माने जाते थे, उन्हें राजनीतिक लाभ मिला तथा वे चुनावी राजनीति में हिस्सा भी लेने लगे ताकि उनका हित पूरा हो सके। दूसरा, जातिगत सदस्य कई राजनीतिक दलों में बंट जाते हैं। जिससे जाति बहुत कमजोर हो गई। तथा तीसरा, संख्या के तौर पर अधिक से अधिक जातियों को निर्णय-निर्माण संस्थाओं में प्रतिनिधित्व मिला और इसने परंपरागत रूप से प्रभावसाली जातियों के वर्चस्व को कमजोर किया।

सामान्यतौर पर जातिवादी संगठन राजनीतिक दलों से जुड़े हुए होते हैं। प्रायः जातियों एवं दलों के कार्यक्रम एवं गतिविधि आपस में जुड़े हुए होते हैं। चुनाव के समय जातिवादी संगठन सम्मेलन एवं पंचायत करते हैं, ताकि वे यह निर्णय कर सके कि वो किस पार्टी को वोट या समर्थन देंगे। सामान्यतया, वे उस पार्टी का समर्थन करते हैं जो उनके मुद्दों को उठाये जिनमें आम मुद्दों के साथ-साथ जाति विशेष के मुद्दे भी शामिल हैं। इसके तीन परिणाम हुएः- एक, इससे विभिन्न जातियों की राजनीतिक भागीदारी बढ़ती है; दो, इससे विभिन्न पार्टियों के बीच जातियों का समर्थन भी बंटा है और जाति की कठोरता को दूर किया है; और तीन, संख्यात्मक रूप से प्रभावशाली जातियों, दलितों एवं पिछड़ों को उच्च जातियों की तुलना में निर्णय प्रक्रिया में ज्यादा प्रतिनिधित्व मिला। इसने बड़ी जातियों के वर्चस्व को कमजोर किया गया है और इससे समावेश को बढ़ावा मिला है।

अभ्यास प्रश्न 1

टिप्पणीः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जाति पर सामाजिक एवं धार्मिक आंदोलनों के प्रभाव की चर्चा करें।

.....

.....

.....

.....

.....

.....

2) जाति-आधारित संगठनों के उदय की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.3 जाति संगठनों द्वारा उठाये गये मुद्दे

जाति संगठनों द्वारा उठाये गये मुद्दों में प्रमुख - आत्म-सम्मान, गौरव, मानव अधिकार, न्याय, संसाधनों का बंटवारा, राजनीतिक प्रतिनिधित्व, और जाति के अंदर आंतरिक समस्याऐं इत्यादि होते हैं। दलित एवं अन्य-पिछड़े वर्ग के संगठन वर्तमान में जारी आरक्षण को सही मानते हैं तथा वे इस निजि क्षेत्र में भी लागू करने की माँग कर रहे हैं। कुछ उच्च जातीय संगठन भी उच्च जातियों के लिए आरक्षण की माँग करते हैं। इसके जवाब में अभी हाल ही में 124वां संविधान में संशोधन करके आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों के लिए 10 प्रतिशत आरक्षण की सिफारिश की गई है जिसमें उच्च जातियाँ भी शामिल है। रूडोल्फ एण्ड रूडोल्फ के अनुसार जाति संगठन जातियों को सशक्त बनाने में अपनी लोकतांत्रिक भूमिका निभा रहे हैं। यद्यपि, सभी जातियों ने अपने संगठन बना लिये हैं, लेकिन दलित एवं पिछड़े वर्गों के संगठन अपने वर्गों को सशक्त बनाने में अपनी भूमिका अधिक निभा रहे हैं। ये संगठन न केवल आंतरिक मतभेद एवं विवादों को सुलझाते हैं बल्कि, चुनावों में भी भागीदारी के लिए लोगों को संगठित करते हैं। कई प्रकार के मुद्दों को वे उठाते हैं जैसे, आत्म-सम्मान, जाति-आधारित हिंसा, उत्पीड़न, शारीरिक प्रताड़ना तथा मानव अधिकार जैसे मुद्दे भी शामिल हैं। इसके अलावा भी मुद्दे है जैसे आरक्षण, छूआछूत इत्यादि। ये सभी मानव अधिकार से जुड़े मुद्दे है क्योंकि यू.एन. मानव अधिकार की परिभाषा के अनुसार वे सभी अधिकार जो कि व्यक्ति से जुड़े हुए हों, मानव अधिकार की श्रेणी में आते हैं। जातिगत संगठन अपनी जाति के सदस्य जिन्होंने परीक्षा में उच्च स्थान प्राप्त किया था खेल एवं अन्य गतिविधि में नाम कमाया है उनको सम्मानित करते हैं। ये संगठन इनके सम्मान में समारोह भी आयोजित करते हैं कई संगठन डा. अम्बेडकर के नाम पर भी बनाये गये है जिनका

मकसद डा. अम्बेडकर के विचारों को प्रसारित करना तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों को बढ़ावा देना है।

11.4 जातिवादी गठबंधन (Caste Formations)

जाति की प्रकृति में बदलाव जाति के परंपरागत रीति-रिवाजों में परिवर्तन जिसे हम धर्मनिरपेक्षीकरण के रूप में जानते हैं, इसने विभिन्न जातियों के बीच राजनीतिक गठबंधन को संभव बना दिया था। इन गठबंधनों को हम जातिवादी गठबंधन भी कह सकते हैं। जिन जातियों ने ऐसे गठबंधन किये हैं, वे विभिन्न सामाजिक श्रेणियों से संबंधित है। लेकिन उनका सामान्य हित (विशेषकर दलितों एवं अन्य पिछड़े वर्गों के), राजनीतिक सत्ता में हिस्सेदारी, आर्थिक अवसर या सामाजिक न्याय, उनको अपने जातिगत संगठन बनाने में हौंसला बढ़ाते हैं। जैसा कि अपने पढ़ा होगा, जातिवादी संगठन दो प्रकार के होते हैं, एकल जाति संगठन, या दूसरा विभिन्न जातियों को मिलाकर बनाए गए संगठन या संघ। लेकिन जातिगत गठबंधन हमेशा जातिय संगठनों से नहीं बनाया जाते हैं। उन्हें बिना जातीय संगठनों के भी बनाया जा सकता है। ये गठबंधन प्रायः चुनावी राजनीति के संदर्भ में बनाये जाते हैं। चुनाव जीतने के मकसद से ऐसे गठबंधन बनाये जाते हैं। यहाँ यह जानना जरूरी है कि राजनीतिक पार्टियों विभिन्न जातियों का समर्थन प्राप्त करने के लिये जातिवादी संगठनों को बनाने को प्रेरित करते हैं। शैक्षिक एवं लोकप्रिय संदर्भ में, जातिवादी संगठन जातियों के प्रथम नामों से बनाए जाते हैं, जो इन गठबंधनों के भाग होते हैं। स्वतंत्रता पूर्व एवं स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जाति संगठनों ने भारत में राजनीति को बहुत प्रभावित किया। यहाँ कुछ ऐसे उदाहरण है जो कि जातिवादी संगठनों से संबंधित है। स्वतंत्रता पूर्व दो जातिवादी संगठनों के उदाहरण मिलते हैं। प्रथम, बिहार में 1930 में बनाया गया त्रिवेणी संघ तथा दूसरा अजगर (AJGAR) अंग्रेजी के प्रथम में जातियों के प्रथम अक्षरों से बनाया गया हैः A-अहीर, J-जाट, G-गुर्जर, R-राजपूत से मिलकर बनाया गया संगठन है। इसे पंजाब के किसान नेता छोटूराम ने प्रस्तावित किया था। यद्यपि ये सभी जातियाँ, मध्यम अथवा उच्च वर्ग से संबंध रखती है परंतु इनकी समस्याएं समान हैं और इनक समानताओं के कारण उन्होंने अपने गठबंधन बनाए। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद 1960-1970 के दशक में फिर से अजगर (AJGAR) नाम से एक संगठन बनाया था। इन जातियों को संगठित करके चरण सिंह ने भारतीय क्रांति दल (बी.के.डी) बनाया जिसने कॉंग्रेस पार्टी को उत्तर भारत में कड़ी चुनौती पेश की। इस गठबंधन ने चरण सिंह के 1967 में उत्तर प्रदेश में प्रथम गैर-कॉंग्रेसी मुख्यमंत्री बनने में योगदान दिया।

इन सबमें सबसे महत्वपूर्ण उदाहरण है बामसेफ का एवं DS4 का। बामसेफ का अर्थ है बैकवर्ड एण्ड माइनोरिटी क्लासेज एम्पलायीज फेडरेशन (पिछड़े एवं अल्पसंख्यक वर्गों के कर्मचारियों का संघ)। इसी प्रकार DS4 का मतलब है, दलित, शोषित, समाज संघर्ष समिति (S4 माने अंग्रेजी अक्षर S से चार बार प्रयोग)। इन दोनों संगठनों का गठन काशीराम ने किया था। बामसेफ का गठन 1978 में हुआ था। बामसेफ में अन्य जाति के कर्मचारियों को शामिल करने के लिये इसका दायरा बढ़ाया गया। अंबेडकर के विचारों के आधार पर DS4 ने एक प्रकाशन शुरू किया। इसका नाम था ''आप्रेस्ड इंडियन''। इस पत्रिका के माध्यम से काशीराम ने एक कैंपेन चलाया जिसमें डा. अम्बेडकर के मैसेज शोषित वर्गों के लिए दिये गये थे। इनमें आत्म-सम्मान प्राप्त करने के लिए तथा सामाजिक समानता प्राप्त करने के लिये ''शिक्षित बनो, संगठित रहो तथा संघर्ष करो'' का नारा दिया। 1984 में काशीराम ने एक राजनीतिक दल का गठन किया, जिसका नाम था बी. एस. पी. (बहुजन समाज पार्टी)। बी.एस.पी. उत्तर भारत में एक मजबूत पार्टी बनकर उभरी विशेषकर उत्तर प्रदेश में जहाँ इसकी नेता मायावती वहाँ की चार बार मुख्यमंत्री भी बनी। वास्तव में जाति का उदय एक

सतत प्रक्रिया है, समय के अनुसार नये गठबंधन बनते हैं तथा पुराने गायब हो जाते हैं। तथा फिर से नए गठबंधन पैदा हो जाते हैं।

11.5 चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका

भारतीय राजनीति में जाति सबसे महत्वपूर्ण कारक बन गयी है। जाति चेतना एवं जातिगत संगठनों के उदय ने भारतीय राजनीतिक व्यवस्था को बदल दिया है। सार्वभौम वयस्क मताधिकार के लागू होने के बाद सभी वर्गों की राजनीति में भागीदारी बढ़ी है तथा ये वर्ग बहुत मजबूत ताकत बनकर उभरे हैं। जैसा कि आप इकाई 12 में पढ़ेंगे, जाति एवं राजनीति का अंर्तसंबंध है। इस संदर्भ में, हमें यह समझने की जरूरत है कि भारत की चुनावी राजनीति में जाति के दो पहलू हैंः पहला, जाति के आधार पर प्रतिनिधी चुने जाते है, या जाति के आधार राजनीतिक दल टिकटों का बंटवारा करते हैं, तथा दूसरा पहलू यह है कि राजनीतिक दलों का आधार, जातियों का समर्थन होता है। प्रथम पहलू यह दर्शाता है जबकि दूसरा यह दर्शाता है कि चुनावी सफलता में जातियों की भूमिका अधिक बढ़ गयी है। प्रथम पहलू यह दर्शाता है कि जातियों को विधायी निकायों में शामिल किया जा रहा है जबकि दूसरा यह है कि चुनावी सफलता में जातियों की भूमिका अधिक बढ़ गयी है। दूसरे पहलू में हम इस तरह भी समझ सकते हैं कि अब जातियों को रोजगार, स्वास्थ्य शिक्षा, एवं शासन में अधिक महत्व दिया जा रहा है। इन सब पहलुओं के आधार पर यह कह सकते हैं कि जाति राजनीति का प्रमुख कारक बन गयी है। हालांकि, अन्य कारक भी राजनीति को प्रभावित करते हैं लेकिन जाति इनमें से एक है। वास्तव में कुछ राजनीतिक दलों के समर्थन का आधार ही जाति बन गयी है। उदाहरण के तौर पर बहुजन समाज पार्टी का दलित वर्ग सबसे प्रमुख समर्थन का आधार है। 1980 तक कॉंग्रेस पार्टी का आधार भी दलित वर्ग ही प्रमुख था, इसके अलावा पिछड़े वर्ग एवं उच्च जातियाँ भी इसमें थी। पॉल ब्रास ने इसे ''जातियों का महागठबंधन'' कहा था। इन रणनीतियों के आधार पर विभिन्न राजनीतिक दल चुनाव लड़ने के लिये जातियों के आधार पर टिकट तय करती है। यहाँ तक कि वोट देने वाले भी जाति के आधार पर ही वोट डालते हैं। कई शोध कार्यों से यह पता चलता है कि जातियों ने राजनीति में भागीदारी के कारण लोगों को मजबूत किया है खासकर जो वर्ग पिछड़े हैं उनको अधिक सशक्त बनाया है। इन अध्ययनों में शामिल है, जैफरलों एवं कुमार (सं.) की पुस्तक (2011) 'राइज ऑफ प्लेनियन्स'? जिसके अनुसार भारतीय विधान सभाओं का चरित्र अब पूरी तरह बदल गया है। इसका चरित्र यह दर्शाता है कि स्वतंत्रता प्राती के बाद दलितों, पिछड़े वर्गों तथा कमजोर वर्गों का प्रतिनिधित्व इन निकायों में बढ़ा है। अपनी पुस्तक ''हू वांटस् डेमोक्रेसी''? में जावेद आलम यह सुझाव देते हैं कि, निम्न जातियाँ जाति को अपने सशस्तीकरण के लिये एक महत्वपूर्ण औजार मानती है। प्रताप भानू मेहता ने ''बर्डन ऑफ डेमोक्रेसी'' में यह दलील दी कि, लोकतंत्र ने अशिक्षित तथा गरीब लोगों के लिए अवसर प्रदान किए। और प्रतिनिधित्व परन्तु असमानताओं के कारण एवं उत्तरदायित्व के बीच काफी अंतर है। राज्य की ओर माँग अधिक बढ़ रही है, इससे राज्य की तरफ लोगों का गुस्सा अधिक है एवं शासन के सिद्धांत पूरी तरह बिखर गये है या टूट गये है। योगेन्द्र यादव ने लोकतांत्रिक उथल-पुथल के संदर्भ में विभिन्न सामाजिक समूहों की बदलती भागीदारी का अवलोकन किया। वे इस उथल-पुथल को दो चरणों में विभाजित करते हैंः- प्रथम लोकतांत्रिक उठान, इसमें 1960 से 1970 के दशक में पिछड़े वर्ग उभर कर सामने आये जबकि दूसरा लोकतांत्रिक उठान जब दलितों की भागेदारी बढ़ी। इसका प्रमुख कारण जातिगत संगठनों की प्रभावी भूमिका रही है।

इस संदर्भ में, रजनी कोठारी का यह मानना है कि 'राजनीति में जातिवाद' जाति के राजनीतिकरण से ना कम है या ज्यादा है। अन्य शब्दों में, राजनीति पर जाति का प्रभाव

अधिक नहीं पड़ा है बल्कि जाति का राजनीतिकरण हुआ है। जाति भारत में सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का महत्वपूर्ण पहलू है। सामाजिक संस्था के रूप में, यह वृहत मजबूती के साथ खड़ी है और आधुनिकीकरण के युग में भी जाति अभी विद्यमान है। यद्यपि जाति के अंदर बहुत परिवर्तन आ गया है फिर भी यह राजनीति एवं राजनीतिक दलों के साथ पूरी तरह से घुल मिल गयी है एवं कोई भी राजनीतिक दल इसकी अनदेखी नहीं कर सकता।

11.6 गैर चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका

जाति व्यवस्था बदली परिस्थितियों में अपनी भूमिका को नये सिरे से व्यवस्थित करने का प्रयास कर रही है। औद्यौगीकरण, शहरीकरण, सामाजिक-धार्मिक सुधार, व्यावसायिक गतिशीलता, बाजारी अर्थव्यवस्था में वृद्धि का जाति व्यवस्था पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ा है। इन कारकों के प्रभाव के कारण हमें जाति में आये परिवर्तन को भी समझना पड़ेगा। जैसा कि हम चर्चा कर चुके हैं, जाति ने देश की राजनीति में जबरदस्त भूमिका निभाई है, तथा यह भी सत्य है कि जाति ने गैर-चुनावी क्षेत्र में भूमिका निभाई है।

यह अपेक्षा की जाती है कि शिक्षा के प्रसार से लोग उदार, तर्कशील एवं विस्तृत सोच के बनेंगे। इसी प्रकार भारत में साक्षरता दर में वृद्धि ने लोगों की सोच में परिवर्तन आएगा। इसके कारण जातिवाद एवं जाति की मानसिकता में भी परिवर्तन आएगा। लेकिन साक्षरता में वृद्धि से जातियों में चेतना का भी विकास हुआ है। इससे सभी जातियाँ अपने हितों की रक्षा करना चाहती है। इसी के आधार पर जातियाँ संगठित हो रही है एवं संघ एवं दबाव समूह बना रही है। ये समूह मुख्य रूप से शिक्षा के मुद्दे, स्वास्थ्य एवं धार्मिक मुद्दों को उठाते हैं। ये संगठन हॉस्टल एवं हास्पीटल, स्कूल एवं कॉलेज, धर्मशाला और मंदिर भी चलाते है। ये जातिवादी संगठन अपने सदस्यों को नेतृत्व दिलाने के लिए भी प्रयत्न करते हैं और उन्हें अपनी जाति का प्रवक्ता भी बनाते हैं। जाति संगठन अपने सदस्यों के प्रति वफादारी निभाते हैं और उनकी जातिगत पहचान को मजबूत बनाते हैं।

यद्यपि, जाति पंचायतों की भूमिका में कमी हो रही हैं परन्तु जाति संगठन बढ़ रहे हैं। इनमें से कुछ संगठनों का अपना लिखित संविधान भी है तथा प्रबंध समिति भी है जिससे वे जाति के विषय एवं प्रथा को बनाये रखते है। कुछ जाति संगठनों के अपने अखबार, समाचार बुलेटिन, पत्रिकाऐं, इत्यादि भी होते हैं, जिनके माध्यम से अपने सदस्यों को संगठन की गतिविधियों एवं कार्यक्रमों की जानकारी देते हैं। जातियों के बीच एकता या एकीकरण करने के कई प्रयास किये गये हैं इनमें जाति आधारित ट्रस्टों की स्थापना या इकाई भी शामिल है। ये ट्रस्ट वार्षिक सम्मेलन, मिलन समारोह, वार्षिक डिनर, या त्यौहारों का भी आयोजन करते हैं। ये गरीब बच्चों को छात्रवृत्तियों भी प्रदान कराते हैं। इनमें कुछ ट्रस्ट अपने स्कूल, कॉलेज, हॉस्टल, इत्यादि भी चलाते हैं। ये संगठन अपने सदस्यों की आर्थिक स्थिति में सुधार के लिए सामूहिक क्रेडिट सोसाइटी एवं औद्यौगिक सोसाइटी भी स्थापित करते हैं।

अभ्यास प्रश्न 2

नोटः क) अपने उत्तर के लिए नीचे दिए गए रिक्त स्थान का प्रयोग कीजिए।

ख) अपने उत्तर का मिलान इकाई के अंत में दिए गए उत्तर से करें।

1) जातिवादी संगठनों के उठाए मुद्दे क्या होते हैं?

.....

.....

.....

2 भारत में चुनावी राजनीति एवं गैर चुनावी राजनीति में जाति की भूमिका की चर्चा कीजिए।

.....

.....

.....

.....

.....

11.7 सारांश

जाति, भारतीय राजनीति में जोड़ने वाली एवं बाँटने वाले दोनों कारकों की तरह कार्य करती है। यह विभिन्न हित समूहों के उदय का कारण बन गयी है जो सत्ता एवं पहचान के लिए संघर्ष करते हैं। इस जाति चेतना ने भारतीय राजनीति में नयी प्रवृत्ति को जन्म दिया है जिसमें पुराने जाति गठबंधन टूट रहे हैं एवं नये गठबंधन बनकर उभर रहे हैं। आधुनिक राजनीति के प्रभाव के अंतर्गत जातिवादी संगठन राजनीतिक लामबंदी का मुख्य आधार बन चुके हैं। ये राजनीतिक सत्ता हासिल करने, सामाजिक हैसियत, एवं आर्थिक स्थिति मजबूत करने के इरादे से उभर कर सामने आये हैं। जो जाति समूह, जिन्हें निम्न समझा जाता था, अब वे संगठित होकर अपनी माँगों के लिये दबाव बना रहे है। अपने आत्म विश्वास तथा स्तर में वृद्धि एवं साख में वृद्धि के कारण, ये राजनीतिक प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभा रहे हैं एवं अपनी स्थिति या पहचान मजबूत कर रहे हैं। इस प्रकार राजनीति जाति के लिये एवं जाति राजनीति के लिए महत्वपूर्ण बन गयी है।

11.8 संदर्भ सूची

बेली, सुसान (1999), ''द न्यू कैम्ब्रिज हिस्ट्री ऑफ इंडियाः कास्ट, सोसाईटी एण्ड पोलिटिक्स इन इंडिया फोम दि एंटिनथ सेंचूरी टू द मॉर्डन एज'', कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस।

गुप्ता, दीपांकर (2000), ''इंटेरोगेटिंग कास्ट'', नई दिल्ली. पेंग्युविन।

जैफेरले, क्रिस्टोफर (2003), ''इंडिया'स साइलेंट ऐव्ल्यूशनः द राइज ऑफ द लो कास्टस इन नॉर्थ इंडियन पोलिटिक्स'', परमानेंट, रानीखेत, ब्लैक।

ऑमवेअ, गेल (1994), ''काशीराम एण्ड बहुजन समाज पार्टी'', के. एल. शर्मा (सं.) में, ''कास्ट एंड क्लास इन इंडिया, रावत जयपुर, प्रकाशक।

पई, सुधा (2002), दलित एर्ससन एण्ड अफिनिबूड़ डैमोक्रेटिक रेवोल्यूशन इन उत्तर प्रदेश, नई दिल्ली, सेज पब्लिकेषन।

प्रताप भानु मेहता (2003), ''द वर्डन ऑफ डेमोक्रेसी'', नई दिल्ली, पेंग्युविज।

रजनी कोठारी (1970), कास्ट इन इंडियन पोलिटिक्स; ओरियंट हैदराबाद, लोंगमेन।

रूडोल्फ, ल्योड एंड सुसैन रूडोल्फ (2012), ''द पोलिटिकल रोल ऑफ इंडिया'स कास्ट असोसिएशन'', पैसिफ्कि अफेयर्स, 85 (2): 335-353.

सोनालडे देसाई एंड अमरेष दूबे (2011), ''कास्ट इन 21 सेन्चूरी इंडियाः कमपीटींग नैरेट्विस'', ई. पी. डब्ल्यू., 46 (11): 40-49।

शाह, ए., एस (2007), ''कास्ट इन द 21 सेन्चूरीः फोंम सिस्टम ऐलिमेंटस'', ई. पी. डब्ल्यू, 42 (44): 109-116।

शाह, घनस्याम (सं.) (2004), ''कास्ट एण्ड डैमोक्रेटिक पालिटिक्स इन इंडिया'', न्यू डेल्ही, परमानेंट ब्लैक।

11.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

अभ्यास प्रश्न 1

1) सामाजिक और धार्मिक आंदोलनों लोगों के जाति के प्रति व्यवहार में परिवर्तन लाया। इन्होंने जातियों को समानता, स्वतत्रंता तथा सामाजिक उत्थान की महत्ता की चेतना को पैदा किया।

2) जातिय संगठन जातियों के अधिकारों को लामबंद करने के उद्देश्य से उभरे। इन्होंने जातियों का राजनीतिकरण तथा समाज का प्रजातांत्रिकरण हुआ। जाति संगठन एक जातिय एवं अनेक जातियों के गठबंधनों के रूप में सक्रिय होते हैं।

अभ्यास प्रश्न–2

1) इन मुद्दों में शामिल हैंः जातियों को आर्थिक अवसरों को प्रदान कराना तथा उन्हें, राजनीतिक प्रतिनित्व तथा सामाजिक समानता दिलाना।

2) चुनावी राजनीति में जातियाँ राजनीतिक दलों के समर्थन तथा गैर-चुनावी राजनीति में सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा धार्मिक मुद्दों को उठाने वाली एंजेसी के रूप में काम करते है।